ऋग्वेदीय वाक्–तत्त्व विमर्श

डॉ. उमा आर्या
असिस्टेन्ट प्रोफेसर
सत्यवती महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय
umaaryajnu@gmail.com

प्रस्तुत शोधपत्र में विशेषतः ऋग्वेद के वागाम्भृणी सूक्त तथा अस्यवामीय सूक्त में वर्णित वाक्तत्त्व को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। वागाम्भृणी सूक्त ऋग्वेद का दशम मण्डल का 125वाँ सूक्त है। इस सूक्त का ऋषि वागाम्भृणी है। देवता आत्मा है इसमें आत्मस्तुति की गयी है। यह सूक्त अष्टमन्त्रात्मक है। इसका दूसरा मन्त्र जगती छन्द में तथा शेष मन्त्र त्रिष्टुप् में निबद्ध है। वेंकटमाधव के अनुसार वाक् सूक्त की ऋषिका अम्भृण की पुत्री वाक् और देवता आत्मा है। कात्यायन ने इस विषय में कहा – ''आम्भृणी तुष्टावात्मानम्''[1] अम्भृण को महद् आदि पंचविंशति नामों में परिगणित किया है।[2] इससे यह स्पष्ट होता है कि 'महान् परमात्मा' अम्भृण की पुत्री वाक् आम्भृणी कहलाती है। वाक् सूक्त में परमात्मा का मातृत्व के रूप में निरूपण मिलता है। सायणानुसार भी वाक् महर्षि अम्भृण की पुत्री है। जो सर्वजगतरूपा सब कुछ वाक् ही है, वह परमेश्वर से तादात्म्य करती है, अर्थात् आत्मस्तुति करती है।

अस्यवामीय सूक्त का आरम्भ अस्य वामस्य[3] पदों से होता है। इसलिए यह सूक्त अस्यवामीयसूक्त कहलाता है। यह सूक्त ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के 164 सूक्त के 52 मन्त्रों में निबद्ध है। इन मन्त्रों में 1 से 41 तक के मन्त्रों के देवता ''विश्वेदेवाः'' अर्थात् सभी देव माने गये हैं। देवता से अभिप्राय – वर्णनीय विषय है। 42वें मन्त्र का देवता वाक् और आप हैं, 43वें मन्त्र का शकधूम और सोम है, 44वें का केशिनः (अग्नि, सूर्य और वायु) है। 45वें मन्त्र का वाक् है, 46वें तथा 47वें का सूर्य, 48वें का संवत्सर, 49वें का सरस्वती, 50वें का साध्यगण, 51वें का सूर्य पर्जन्य, अग्नि तथा 52वें का सरस्वान् अथवा सूर्य हैं। अस्यवामीय सूक्त के सभी देवता सृष्टि विषयक हैं। वाक् तत्त्व का सृष्टि प्रक्रिया में महनीय स्थान है।,

मुख्यशब्द– वाक्, वागाम्भृणी, अस्यवामीय, वेंकटमाधव, सायण, सातवलेकर, दयानन्द, अपरवाद, व्योमवाद, परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी

ऋग्वेद के वागाम्भृणी सूक्त के प्रथम मन्त्र में रूद्र, वसु, आदित्य सब देव उसके पुत्र हैं। जिन्हें वह पुत्रवत् प्रेरित करती है। समस्त जीवों को अन्न प्रदान करती है। ब्रह्मस्वरूपा वाक् ग्यारह रूद्रों, आठ वसुओं[4], बारह आदित्यों[5] तथा सभी देवों के साथ विचरण करती है। वही मित्र तथा वरुण को आश्रय देती है। इन्द्र, अग्नि तथा अश्विनीकुमारों को धारण करती है।[6] रूद्र से अभिप्राय दश प्राण तथा एक आत्मा – एकादश रूद्र।[7] वाक् बारह मासों में सभी देवों के साथ विचरण करती है। जयदेव शर्मा ने रूद्राः वसवः का अर्थ रुलाने वाले प्राण किया है।[8]

जगत् कारणस्वरूपा वाक् अन्धकार को छिन्न–भिन्न करने वाले चन्द्रमा को धारण करती है। त्वष्टा (देवों के शिल्पी विश्वकर्मा) पृथ्वी (पूषा)[9] भग (ऐश्वर्य) को धारण करती है। यजमान के लिए याग के फलस्वरूप धन को धारण करती है। सोम के सेवनकर्त्ता, देवों को हवि प्रदाता तथा तृप्त करने वाले याचक के लिए द्रविणम् (धन) को धारण करती है।[10] इस मन्त्र में समस्त कार्यों का निष्पादन करने वाली वाक् है। जो समस्त जगत् के प्राणियों की रक्षक तथा कारणरूप को धारण किए हुए है।

वाक् राष्ट्र (समस्त ब्रह्माण्ड) की स्वामिनी है। धन संपदा को एकत्रित करने वाली है। परम ब्रह्म को जानने वाली अर्थात् सभी जानने योग्य ज्ञानों की ज्ञात्री है। पूजनीयों में पूज्या तथा मुख्या है। समस्त पदार्थों को धारण करने वाली, सभी वस्तुओं में व्याप्त तथा सभी पदार्थ वाक् के स्वरूप में समाहित हैं। देवगण अनेक रूपों में वाक् का वर्णन करते हैं।[11]

वेंकटमाधव ने राष्ट्री को ईशित्री[12] कहा है अर्थात् ईश्वर गुणों वाली वाक्। सायण ने **ईश्वरनामैतत् सर्वस्य जगतः ईश्वरी** कहा है।[13] सातवलेकर ने जगत की स्वामिनी[14] के रूप में निरूपित किया है। वाक् कहती है कि वह कहाँ नहीं है? अर्थात् वाक् ही सर्वत्र विचरण कर रही है। राष्ट्र संचालन में, व्यापार में श्रेष्ठकार्यों में विद्वान् लोग वाक् को ही सर्वत्र अनेक रूपों में देखते हैं।

इस मन्त्र में वाक् मनुष्यों को उपदेश करती हुई कहती है – जो अन्न खाता है, देखता है जो श्वासोच्छ्वास की क्रिया करता है, बोलता है। वे सब वाक् द्वारा ही वचन सुनते हैं। परन्तु वाक् के स्वरूप को नहीं जानते हैं, वे अज्ञानी पुरुष हैं। वाक् विश्वसनीय तथ्य उद्घाटित करती है। जो वाक् को नहीं मानते वे अधोगति को प्राप्त करते हैं।[15] देवों तथा मनुष्यों के लिए कहती है कि वाक् जिसे चाहती है उसे सर्वोत्कृष्ट तथा शक्तिशाली बना देती है। उसको ब्रह्मवेत्ता बना देती है। क्रान्तदर्शी ऋषि तथा उत्तम बुद्धि युक्त बना देती है।[16] यह सब वाणी का सामर्थ्य है कि मनुष्य वाणी के सहयोग से मनोवेत्ता, सुबुद्धि युक्त ज्ञानी मनुष्य बन जाता है।

पं. मधुसूदन ओझा ने सृष्टि संबन्धित विवेचन करते हुए 'दशवाद रहस्यम' के माध्यम से सृष्टि सिद्धान्त को निरूपित किया। इनमें – (1) सदसद्वादः, (2) रजोवाद, (3) व्योमवादः, (4) अपरवादः, (5)

आवरणवादः, (6) अम्भोवादः, (7) अमृतमृत्यवादः, (8) अहोरात्रवादः, (9) दैववादः, (10) संशयवादः, (11) सिद्धान्तवादः[17]

उपरोक्त वादों में से अपरवाद तथा व्योमवाद वाक् सूक्त को व्याख्यायित करता है। समस्त संसार को आपोमय कहा गया है। ये आपः वाक् से उत्पन्न है। पदार्थों की स्थिति वाक् में है। इसीलिए वाक् परम गति वाली है।[18] वाक् समस्त (जड़–चेतन) विश्व को उत्पन्न करके व्याप्त हुई है। इससे भिन्न कुछ भी नहीं है।[19] वाणी व्योम पद से प्रसिद्ध है।[20] अमृतवाक् ही व्योम है। वेद चतुष्टयी है। वेद ने वाक् से ही संसार की उत्पत्ति मानी है। व्योम ही विश्व की गति तथा प्रतिष्ठा है।[21] वेद त्रय व्योम है जो परम प्रतिष्ठित है।[22] वाणी जगत् ब्रह्मरूपा ब्रह्मवेताओं, परमेश्वर से द्वेष रखने वाले हिंसक जनों को मारने हेतु रूद्र के धनुष पर प्रत्यंचा (डोरी) चढ़ाती है। सज्जनों की रक्षा तथा उनके शत्रुओं को विनष्ट करने के लिए युद्ध की व्यवस्था करती है। वाक् ही पृथ्वी लोक तथा द्युलोक में व्याप्त है।[23] भूलोक के ऊपर द्युलोक को उत्पन्न करती है अर्थात् पृथ्वीलोक से ऊपर सूर्य को उत्पन्न करती है।

सायण के अनुसार – पितरं दिवमहं सुवे प्रसुवे जनयामि। वेंकटमाधव – अहं प्रेरयामि आदित्यम्। सातवलेकर के अनुसार यह द्युलोक को उत्पन्न करती है। समुद्र के जलों के मध्य वाक् का जन्म है। वाक् विविध रूपों से लोकों को व्याप्त करती है। द्युलोक को मस्तक से स्पर्श करती है। वाक् के पैर पृथ्वी तथा मस्तक द्युलोक में है।[24] सभी लोकों और प्राणियों को उत्पन्न करके वायु के समान सर्वत्र गति करती है। द्युलोक और भूमि से भी परे है। वाक् की महिमा अत्यन्त व्यापक है।[25] सर्वत्र वाणी का ही साम्राज्य है। समस्त प्राणी मात्र की अन्नप्रदात्री तथा उपदेशिका वाणी ही है। वाणी ही मनुष्य को ऋषि सुबुद्धि युक्त बनाती है। सज्जनों की रक्षा हेतु दुष्टों का संहार करती है। यह भूलोक तथा द्युलोक में व्याप्त है। सबसे महान् उत्कृष्ट महिमा युक्त वाक् है। यही वाक् जगत्कारणरूप में प्रतिपादित है। इस सूक्त में ब्रह्म का मातृपक्ष उद्घाटित किया गया है। वागाम्भृणी सूक्त से वाक् की सर्वव्यापकता सिद्ध होती है। यही वाक् रूप परमेश्वर विविध सृष्टि को उत्पन्न करता है।

वेदवाणी का स्वरूप

''ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्'' सभी देवों ने आकाश के समान विस्तीर्ण *ऋग्वेद* के ज्ञान पर ही आश्रय ग्रहण किया हुआ है। *ऋग्वेद* से तात्पर्य यहाँ 'वेदत्रयी' है। जो इस रहस्य को नहीं जानते है, केवल वेद के मन्त्रों का पाठमात्र उनका क्या हित कर सकता है, परन्तु जो वेद मन्त्रों के तथ्य तथा अर्थ को जानते हैं। उसका जीवन में पालन भी करते हैं। वे सब दुःखों से रहित होकर सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करते हैं।[26] वेद आकाश के समान सर्वव्यापक तथा अनश्वर है। परमेश्वर ही परम निधान है। सब ब्रह्म में ही प्रतिष्ठित हैं। जो मनुष्य वेदाध्ययन तो करता है, परन्तु अर्थज्ञान नहीं रखता है। वह अपने जीवन को निर्देशों के अनुसार नहीं बनाता है। परमेश्वर को जानने का प्रयास भी नहीं करता है। वह बोझ का भार वहन करने वाले पशु के समान है। ऐसे व्यक्ति का वेदमन्त्र उद्धार नहीं करते हैं। अपितु

जो वेदाध्ययन के साथ–साथ जीवन का वैदिक सिद्धान्तों के अनुसार निर्वाह करता है। वह ब्रह्म को जानने का प्रयास करता है। परमात्मा को प्राप्त कर लेते हैं, वे मोक्ष को प्राप्त करके ब्रह्मलोक में रहते हैं। इस मन्त्र का अध्यात्म तथा अधिदैवत पक्षों में भी अर्थ किया हैं। शाकपूणि के अनुसार अध्यात्म पक्ष में– ओंकार शब्द अक्षर है। सब ऋचाएँ उसी में ओत–प्रोत हैं। शरीर ऋचाएँ हैं। उनमें निवास करने वाला अविनाशी धर्म वाला तत्त्व आत्मा अक्षर है। इन्द्रियाँ देव हैं। सब इन्द्रियाँ आत्मा की अधीनता में स्थित है।[27] इन इन्द्रियों से ही ज्ञान का ग्रहण होता है। वाक् स्वयं में ज्ञान है तथा ज्ञान प्रदान करने का साधन भी।

अधिदैवत पक्ष में – आदित्यपुरुष अक्षर है। ऋचाएँ आदित्यावयव हैं। सब आदित्यावयव आदित्यपुरुष के अधीन हैं। देव रश्मियाँ है। ये रश्मियाँ आदित्यपुरुष में अधिष्ठित है।[28] यह अधिदैवत व्याख्या शाकपूणि के पुत्र के अनुसार है।

विद्युत् रूपी वेद वाणी

गौरी मध्यमलोक की वाणी विद्युत है। यही वृष्टि उत्पन्न करती है। इससे ही ध्वनि उत्पन्न होती है। यह अति विस्तृत आकाश में नाद करती हुई, वृष्टि करती है। इसकी ध्वनि एकपदी, द्विपदी, चतुष्पदी, अष्टापदी तथा नवपदी है। मेघ को आश्रय देने से एकपदी, मेघ तथा वायु का आश्रय देने से द्विपदी कहलाती है। चारों दिशाओं में व्याप्त होने से चतुष्पदी कहलाती है। चारों दिशाओं तथा उपदिशाओं में व्याप्त होने से अष्टापदी तथा दिशाओं, उपदिशाओं तथा एक ऊर्ध्व दिग् इनमें व्याप्त होने के कारण नवपदी कहलाती है। अनेक प्रकार से जलों को बरसाती हुई यह विद्युत परम आकाश में चमकती है। इसी प्रकार से ब्रह्म का उपदेश करने वाली वेदवाणी (गौरी) आनन्दरसों को उत्पन्न करती है।

इसका अन्य प्रकार से भी अर्थ कर सकते हैं– यह वाणी परमेश्वर का ज्ञान कराती है। इसलिए एकपदी कहाती है। गुरु तथा शिष्य का ज्ञान कराने से द्विपदी कही जाती है। चारों वेदों में वर्णित होने से चतुष्पदी कहाती है। चारों वेदों तथा उपवेदों में व्यापक होने से अष्टापदी कहलाती है। वर्णों तथा आश्रमों में प्रतिष्ठित होने से भी अष्टापदी कही जाती है। इनके सहित नवें ब्रह्म आश्रित होने के कारण नवपदी कही जाती है। अक्षर ब्रह्म का सहस्र प्रकार से वर्णन करने पर यह सहस्राक्षरा कही जाती हैं। वह परम स्थान प्रणव (ओंकार) में आश्रित है। यह समस्त मनुष्यों को उपदेश करके सन्मार्ग में प्रेरित करती हैं।

इससे भिन्न अर्थ में गौरी शब्दात्मक वाक् है। जो जल आदि का धारण करके घट आदि शब्दों का निर्माण करती है। वह ब्रह्मरूप होने से एकपदी, सुप्–तिङ् भेद से द्विपदी, नाम, आख्यात, उपसर्ग तथा निपात इन चार भेदों से चतुष्पदी, आठ विभक्तियों के कारण अष्टापदी और नाभिसहित उरस् कण्ठ आदि नौ उच्चारण स्थानों में उत्पन्न होने से नवपदी कहलाती है। तत्पश्चात् बहुविध अभिव्यक्तियों को प्राप्त करके परम व्योम अर्थात् अपने मूलाधार उत्कृष्ट हृदयाकाश में अनेक आकारों में व्याप्त होकर ध्वनियों के

अनेक प्रकार वाली हो जाती है।[29] वेदवाणी ज्ञान की धाराएँ सभी दिशाओं में बरसाती है। सभी प्राणी ज्ञान धाराओं से तृप्त होकर सुखपूर्वक तथा शान्ति सहित जीवन व्यापन करते है।[30]

वाणी के भेद

अस्यवामीय सूक्त के 45वें मन्त्र में वाक् के भेद का निरूपण किया गया है, जिसमें सायण विभिन्न मतों को उद्धृत करते हैं।

चत्वारि वाक्परिमिता पदानि तानि विदुब्राह्मणा ये मनीषिणः।
गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति।[31]

वैदिक मतानुसार – ओ३म् भूः, भुवः, स्वः, इसमें ही वाक् परिमित है।[32]

वैयाकरणों के अनुसार – नाम, आख्यात, उपसर्ग, निपात। इस मत को दयानन्द ने भी स्वीकार किया।[33] महाभाष्यकार भी यही मानते हैं, परन्तु महाभाष्य के टीकाकार नागेश भट्ट वाक् के परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी भेद स्वीकार करते हैं। सातवलेकर, वासुदेवशरण अग्रवाल भी वाक् के परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी भेद स्वीकार करते हैं।

याज्ञिकों के अनुसार – मन्त्र, कल्प, ब्राह्मण, व्यावहारिकी वाक्।[34]

नैरुक्तों के मतानुसार – ऋग्, यजु, साम, आदि चार वेद।[35] इस प्रकार से अन्य मन्त्रों के भाष्यों में भेद दृष्टिगोचर होता है।

वाणी के चार प्रकार बताए गए है। परा, पश्यन्ती, मध्यमा तथा वैखरी[36]। इनमें से प्रथम परा वाक् मूलाधार से उत्पन्न होती है। इस परा वाक् का नाद अत्यन्त सूक्ष्म होता है। यही वाक् जब हृदयस्थ होती है तब योगी के द्वारा साक्षात् होने पर पश्यन्ती वाक् कहलाती है। यही वाणी बुद्धि को प्राप्त करके मध्यमा कहलाती है। जब वाणी विकृत होने पर कण्ठ–तालु आदि उच्चारण स्थानों से निकलती है। तब वैखरी वाणी कहलाती है। वाणी के चारों स्तरों को वेदज्ञ लोग ही जान पाते है। तीन वाणी गुहा रूप में स्थित होती हैं। सभी मनुष्य चतुर्थ वाणी का ही प्रयोग करते है। परा, पश्यन्ती तथा मध्यमा मूलाधार, हृदय बुद्धि में स्थित होने के कारण सब के लिए अपने स्वरुप को प्रकट नहीं करती हैं। इन तीनों को योगी व्यक्ति ही जान सकते हैं। चतुर्थ वाणी को सभी व्यक्ति व्यवहार में लाते हैं।

महर्षि दयानन्द[37] ने 'चत्वारि पदानि' से नाम, आख्यात, उपसर्ग तथा निपात, इन चारों को स्वीकार किया है। वे विद्वान् तथा अविद्वान् में भेद करते हुए कहते है कि– जो विद्वान् नाम, आख्यात, उपसर्ग तथा निपात को जानते है तथा अविद्वान् नहीं जानते हैं। विद्वान् लोगों के तीन (नाम, आख्यात, उपसर्ग) ज्ञान में रहते है। चौथे सिद्ध शब्दसमूह को व्यवहार में रखते है। अविद्वान् तीन को नहीं जानते परन्तु निपातरूप साधन ज्ञान रहित प्रसिद्ध शब्द का प्रयोग करते हैं।

सातवलेकर[38] ने भी वाणी के चार स्तर स्वीकार किए है 1. परा 2. पश्यन्ती 3. मध्यमा 4. वैखरी। इनको क्रमशः मूलाधार, हृदय, बुद्धि तथा कण्ठ से उत्पन्न होने वाली बताया है। परा, पश्यन्ती मध्यमा गुहा में छिपी रहने से केवल योगी जन ही जान सकते हैं। जो कण्ठस्थानीय चतुर्थ वाणी है। उसे सभी मनुष्य लोग जानते और बोलते हैं।

इस तरह ऋग्वेद के वागाम्भृणी तथा अस्यवामीय सूक्तों के माध्यम से वैदिक ऋषि ने वाक्तत्त्व के अत्यन्त विस्तृत स्वरूप का वर्णन किया है। वाक् ही परा–अपरा विद्या की विवेचिका है। सृष्टि के समस्त ज्ञान–विज्ञान एवं व्यावहारिक पक्ष को सिद्ध करने में सक्षम है। वस्तुतः मनुष्य का सामर्थ्य भी वाक्तत्त्व के सामर्थ्य से ही सिद्ध है।

सन्दर्भ

1 ऋ.सर्वा. 63.6
2 निघ. 3.3, पृ.13
3 अस्य वामस्य पलितस्य होतुस्तस्य भ्राता मध्यमो अस्त्यश्नः। ऋ. 1.164.1
4 अग्निश्च पृथ्वी च वायुश्चान्तरिक्षं चादित्यश्च द्यौश्च चन्द्रमाश्च नक्षत्राणि चैते वसवः। एतेषु हीदं सर्वं हितमिति तस्माद् वसव इति। बृ.उप. 3.9.3
5 द्वादश वै मासाः संवत्सरस्य। एत आदित्याः। आददाना आदित्याः। बृ. उप. 3.9.5
6 अहं रूद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरूत विश्वदेवैः। अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नि अहमश्विनोभा। ऋ. 10.125.1
7 दशेमे पुरुषे प्राणा आत्मैकादशः। ते यदास्माच् शरीरान् मर्त्याद् उत्क्रामन्त्यथ रोदयन्ति। यद् तद् रोदयन्ति तस्माद् रुद्राः। बृ. उप. 3.9.4
8 ऋ. भा., पं. जयदेव शर्मा, ऋ. 10.125.1
9 पूषा इति पृथ्वीनामसु पठितम्। निघ. 1.1
10 अहं सोममाहनसम् ..... सुन्वते। ऋ. 10.125.1
सोमम् आहनसम् आहन्तव्यम् सोमं यदा शत्रूणाम् आहन्तारं दिवि वर्तमानं देवतात्मानं सोमम्। सा. भा. ऋ. 10.125.2
11 अहं राष्ट्री ..... वेशयन्तीम्। ऋ. 10.125.3
12 वें. भा. ऋ. वही
13 सा. भा. ऋ. वही
14 सात. भा. ऋ. वही
15 मया सो अन्नमत्तिः ..... ते वदामि। ऋ. 10.125.4
16 अहमेव स्वयमिदं वदामि ..... सुमेधाम्। ऋ. 10.125.5
17 दशवादरहस्यम्। पं. मधुसूदन ओझा
18 आपोमयं जगत् ..... वाक् परमा गतिश्च। दश. रह. 4.1, पृ.66
19 वागेव विश्वम्। वही. 4.2
20 वागेव सा व्योम। वही. 4.3
21 या चामृता वाक् परमं तदस्ति व्योमापि तद्वेद चतुष्कमस्ति। या वेदवाचस्तत एव विश्वं जज्ञेऽस्य तद् व्योम गतिः प्रतिष्ठा। दश. रह. वही.
22 वेदत्रितयं प्रतिष्ठा यद् व्योम तद् व्योम परा प्रतिष्ठा। दश. रह. 3.6
23 ऋ. 10.125.6
24 अहं सुवेपितरमस्य मूर्धन्मम योनि ..... स्पृशामि। 10,125.7
25 अहमेव वात इव .... बभूव। 10,125.8
26 ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः। यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते। ऋ. 1.164.39
27 नि. 13.13

[28] नि. वही
[29] जेम ैचंतो वितउ जीम टमकपब पितमए टेंनअमक ौंतंद ।हतंअंसए चण्चण् 43–51ए
[30] ततः क्षरत्यक्षरं तद् विश्वमुप जीवति। ऋ. 1.164.42
[31] ऋ. 1.164.45
[32] सर्ववैदिकवाग्जालस्य संग्रहरूपा भूरादयः तिस्रो व्याहृतयः प्रणव एकः इति। सा.भा. 1.164.45
[33] ये विद्वांसः सन्ति ते नामाख्यातोपसर्गनिपातांश्चतुरो जानन्ति। ये चाविद्वांसस्ते नामाख्यातोपसर्गनिपातान्न जानन्ति किन्तु निपातरूपं साधनज्ञानरहितं सिद्धं शब्दं प्रयुंजते। (दया.भा.) पृ.सं.988
[34] अन्ये तु याज्ञिका मन्त्राः कल्पो ब्राह्मणं चतुर्थो लौकिकी इति। (सा.भा.), पृ.सं.707
[35] ऋग्यजुःसामानि चतुर्थो व्यावहारिकी इति नैरुक्ताः। (सा.भा.) पृ.सं.707
[36] ऋ. 1.164.15
[37] दया. भा. वही.
[38] सात. भा. वही.